UNIVERSAL LIBRARY

OU_180545

UNIVERSAL LIBRARY

H81.6|B57V G.H.1399
भदौरिया, शिशुपालसिंह
वीरजा | 1942

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81.6 | B57V Accession No. G.H.1399

Author भदौरिया, शिशुपालसिंह |

Title वीरजा | 1942 |

This book should be returned on or before the date last marked below.

पुस्तकालय
नगारखाना हैदराबाद द.

वीरजा

शिशुपालसिंह भदौरिया

शुभ सम्मति

कैसिल ग्राण्ट,
आगरा, २५—४—४२ ई०

'वीरजा' क्षत्रिय संसार के उदीयमान नवयुवक कवि शिशुपालसिंह भदौरिया की प्रथम नवीनतम जाति की शुष्क धमनियों में उष्ण रक्त का संचार करने वाली कविता पुस्तक है। इसकी कविता घनाक्षरी कवित्त छन्द में मुक्तक काव्य के रूप में की गई है।

'वीरजा' प्राचीनता के साथ क्षत्रियों की जाग्रति में समयानुकूल परिवर्तन और क्रान्ति की उद्भावना करने में अपनी सम्मति में बहुत ही स्तुत्य साहित्य को सम्मुख रख रही है। मैं क्षत्रिय संसार के प्रत्येक व्यक्ति तथा प्रेमी से इस पुस्तक के पाठ की आकांक्षा करता हूं।

(राव) कृष्णपालसिंह

[१]

तुम को है वाणी से जगाना सोये-राष्ट्र को तो,
हम को भी वाण ले महा-समर लेने हैं।
तुमको है लेखनी से अग्नि-गान लिखना तो,
हमको ले भाला शत्रु-मद हर लेने हैं।
तुम को है देना काले अक्षरों में सीख 'शिशु'
हम को उषा में रक्त-रंग भर लेने हैं।
तुम को मराल-वाहिनी के वर लेने हैं तो,
हम को कराल-वाहिनी के सर लेने हैं।

* कवि के प्रति

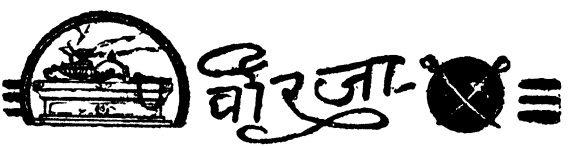

[२]

एक नाव पर ही हमारा आपका है वास,
आओ वर्तमानावर्त्त से इसे उबार लें।
आप वाणी वाले और हम बाण वाले रहे,
अब भी उसी प्रकार से ही पतवार लें।
'शिशु' दोनों जननी के दायें बायें हाथ बनें,
लालिमा से भरे क्षात्रधर्म के विचार लें।
वैरियों के सिर को कलम करने के लिये,
आप लें कलम और हम तलवार लें।

[३]

पूर्वजों की गाथा सुन, माथा उठे ऊपर को,
दास्य-शृंखला के तार तड़से तड़क जांय।
सदियों से सोई हुई राख में अंगारे जगें,
बुझे ज्वालामुखी एकबारगी भड़क जांय,
आंसुओं की पावस-अमावस को चीर 'शिशु'
विद्युत् के तीर स्वाभिमान से कड़क जांय।
लोहित-तराना ऐसा गा दो कवि ! जिसे सुन,
अधरों के साथ भुज-दण्ड भी फड़क जांय।

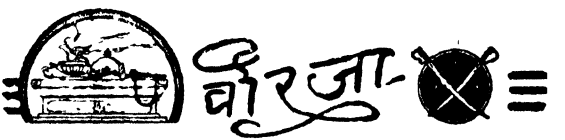

[४]

झण्डा गाड़ देंगे अनाचारी के उर-स्थल में,
शीश अभिमानी का घड़े सा फोड़ जायेंगे।
वीर वाणी वाली टूटी वीणा को सजाने हेतु,
भारतीय-भारती के तार जोड़ जायेंगे।
'शिशु' कल्प-वृक्ष की ललाम-लालिमा के लिये,
जड़ों में 'जड़ों' के रक्त को निचोड़ जायेंगे।
मातृ-शीश मंडित मुकुट से करेंगे या कि
रुण्ड को रण-स्थल में सोता छोड़ जायेंगे।

[५]

अम्बर में अम्बुद हो ऊंचे उठ जायें वे, तो
हम तड़िता हो घन-तन तड़पायेंगे।
ऊपर से गिर कर भू पर जो आयेंगे तो,
हम भूमि-कम्प बन भूमि दहलायेंगे।
'शिशु' जल में डुबायेंगे भंवर बन कर,
हो के वड़वानल हृदय दहलायेंगे।
इस भांति किसी ठौर पर भी हमारे मारे
कुटिल-कुचाली चैन से न रह पायेंगे।

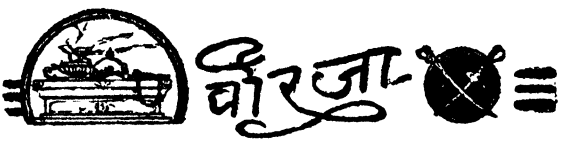

[६]

व्योम की विशालता है सारा विश्व घेरे हुये,
धरती धुरी पर जगत को घुमाती है।
जल लहराता घहराता है महोदधि में,
वायु बड़े बड़े वृक्ष पकड़ हिलाती है।
अग्नि निज-रोष के अंगारे उपजाती 'शिशु',
ज्वालामुखी बन कर भूमि दहलाती है।
इसी लिये पंच-तत्व वाला तन पा करके,
उर में हमारे भी उमंग उठ आती है।

[७]

जब विष्णु पर वक्र-चक्र, शक्र पर वज्र,
देवी पर कठिन-कृपाण खर-धार हो।
शंकर त्रि-नेत्र पर विकट-त्रिशूल राजे,
वायु-पुत्र पर गदा, मृत्यु सा प्रहार हो।
पार्थ पर लक्ष्य में अचूक धनु-वाण 'शिशु'
फरशा परशुराम पर धार-दार हो।
तब फिर इन के पुजारी और पुत्र हो के,
हाथ में हमारे कहो क्यों न हथियार हो ?

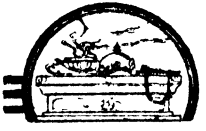

[८]

बांधे रहते हैं रण-कंकण सदैव हम—
किन्तु शान्त बात करना भी हमें आता है।
लंका जीतने को सेतु-बन्ध सेतु बांध कर,
पत्थर तिरा के तरना भी हमें आता है।
सूखे मरु-थल में बहा के लाल धारा 'शिशु'
शोणित से प्यास हरना भी हमें आता है।
मृत्यु के उभय-खेल खेल सकते हैं हम,
मारना भी आता मरना भी हमें आता है।

[९]

शुद्ध वीरता पर कलंक देख सकेंगे न,
तीव्र धार लेकर निशंक उसे धोयेंगे।
सोने पर लोहे की न बेच देंगे तलवार,
स्वाभाविक स्वाभिमान का न मोल खोयेंगे।
वीर वायु मण्डल में प्रमुदित होंगे 'शिशु',
क्रूरता की सांसों का कभी न भार ढोयेंगे।
मर्द की तो गर्द में भी सादर चलेंगे किन्तु,
कादर शिखण्डी के वितान में न सोयेंगे।

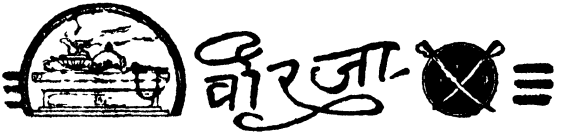

[१०]

ध्येय को बनायेंगे हिमाचल समान उच्च,
उर में भरेंगे गहराई सलिलेश की।
विन्ध्याचल देख कर फेंट को कसेंगे दृढ़,
मरु भूमि तुल्य बान डालेंगे कलेश की।
'शिशु' गंगा सम 'कर्मनाशा' को करेंगे शुद्ध,
हरेंगे तमाम तम शपथ दिनेश की।
इस भांति वीर देश का बना के भव्य वेश,
लाज रख लेंगे कुरुक्षेत्र में स्वदेश की।

[११]

शीश पर मुकुट, भुजाओं में विजय-पत्र,
श्रवणों में गूंज लिये गौरव का गान हो।
श्वास-श्वास में पुलक, रोम रोम में झलक,
भाल में तिलक, अधरों में मुसकान हो।
'शिशु' वक्ष पर जीत लिये हो पुनीत हार,
आंखों में अतीत-ओज भव्य भासमान हो।
पैरों के तले हो वैरियों का अभिमान और
कन्धों पर मां के स्वाभिमान का विमान हो।

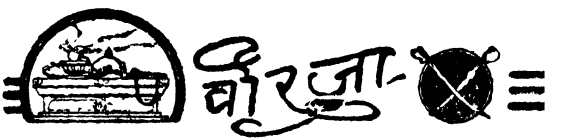

[१२]

खण्डित कमान सी भृकुटियां पड़ी न रहें,
धनु-धारियों के ध्रुव धनुषों सी तन जांय।
आंसुओं से आर्द्रित न बर्छियां-बरौनी रहें,
आहत-मृगाधिपों के साहस से सन जांय।
अधम विरोधियों की अस्थियां हों भस्म 'शिशु',
छार छार हो के मातृ-अंचल से छन जांय।
तरुण-तरणि का तरल तेज धारे हुए,
दोनों नेत्र शंकर के भाल-नेत्र बन जांय।

[१३]

चक्रपाणि ! ऐसी शक्ति दो, कि विश्व पट पर
रंग जम जाये फिर राजपूती छाप का।
'लम्बी चौड़ी डींग' को नियंत्रित बनाने हेतु,
प्रस्फुटित मंत्र हो स्वतंत्रता के जाप का।
पाशविक-पाश का मिटा के बोलबाला 'शिशु'
रोबदार शब्द गूंजे चेतक की टाप का।
अनाचार और अभिमान से प्रपूर्ण जहां
रिपु का हो भाल वहां भाला हो प्रताप का।

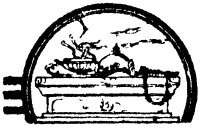

[१४]

आये हैं विपक्षी चढ़, चिन्ता है मुझे न कुछ,
कर ही सकेंगे क्या जो लाखों की अनी रहे।
लेकर कृपाण झाड़ डालूं रण प्रांगण को,
फिर कभी आगे दुख में न जननी रहे।
'शिशु' असि-धार आततायियों के कण्ठ लगे,
जोगिनी की जीभ ताजे खून से सनी रहे।
देके मुंड-माल मुंडमाली माला माल करूं,
सिंह वाहिनी जो नेक दाहिनी बनी रहे।*

[१५]

मेरे मरने से जी उठेंगे सैकड़ों ही वीर,
मेरी मृत्यु में है शक्ति मरों को जिलाने की।
तीक्ष्ण-तर तीर बन तेरे तरकस का, मैं
जानता हूं पूरी-विधि लक्ष्य वेध लाने की।
'शिशु' शूल झेल मैंने जीवन का पाया फल,
लालसा लगी है ऐसे और फल पाने की।
माता! मत व्याकुल हो, सेवा ही करूंगा फिर,
देर मुझको है बस जाने और आने की।‡

---

* 'प्रताप' के ओजस्वी शब्द

‡पुनर्जन्म

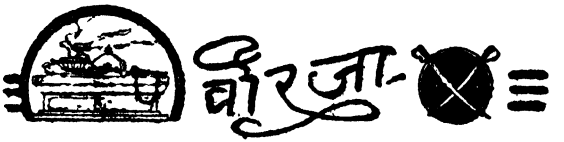

[१६]

प्रतिशोध की ज्वलन्त ज्वाला है जलाती उर,
शान्ति-हेतु रिपु-रक्त नीर हमें चाहिये।
'दशराज' स्वर्ग से निहारते हैं, तर्पण को
जंग-गंग का गंभीर तीर हमें चाहिये।
महिमा महोबे की महान् रखने को 'शिशु'
युद्ध में हिमाचल से धीर हमें चाहिये।
हे हे देव! देवियों को दे दे बल देवल का,
आल्हा और ऊदल से वीर हमें चाहिये।

[१७]

यात्री पूछने लगे—'बताओ शिशु! बात क्या है,
बड़ी ही उमंग से जमाव अलबेला है?'
क्या यहां पधारे हुये हैं कोई महान् गुरु,
दर्शक-समूह जो उन्हीं का बना चेला है!'
मैंने कहा—'भैया! कोई गुरु न पधारे यहां,
आज एक सूरमा की सुस्मृति की बेला है
उसी की जयन्ती में विजय-वैजयन्ती लिये,
राष्ट्र ने समाधि पर जोड़ा यह मेला है।

[१८]

मैंने तो कहानी ही सुनाई गोरा बादल की,
कैसे तुझ पर तड़िता का तेज छा गया।
मैंने खेलने को व्यूह आंगन में खींचा, तुझे
भीषण-रणाङ्गण का भाव कैसे भा गया।,
'शिशु' मैंने एक बार आंसू पिये, तब से तू
रिपु-रक्त पीने की प्रवृत्ति कहां पा गया?
मैंने बिन पानी का पिलाया तुझे शुद्ध दूध,
खरा पानी तेरे खून में कहां से आ गया?

[१९]

याद रहे तूने क्षत्रियाणी का पिया है क्षीर,
पूर्वजों के सांचे में ही अपने को ढालना।
भाले को संभाल, महामाता मातृ मेदिनी के,
छाले पड़े तलवों से कांटों को निकालना।
'शिशु' विघ्न के निकट दौड़ जाना झट पट,
संकट का विकट कटक काट डालना।
प्रण और प्राण की समस्या आने पर लाल!
ज्वाल सा कराल लाल होके प्रण पालना।

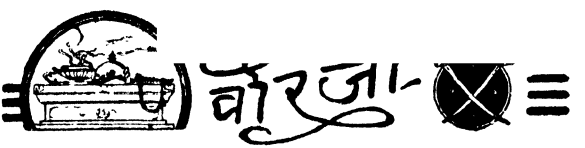

[२०]

राणा के कृपाण से चुटीले हुये मन्द शत्रु,
अपने को कन्दरा के भीतर छिपाते थे।
आहत-अवस्था में कराह कर, आह कर,
हूक की तरह उठते थे अकुलाते थे।
'शिशु' फिर भीतर से बाहर को, बाहर से
भीतर को सांसों-सम जाते और आते थे।
अन्त में वे मृत्यु-ग्रास हो के चिर मूर्छित हो,
आंसुओं की भांति भूमि पर गिर जाते थे।

[२१]

जीर्ण भातृ-अंचल के सीने को है सूचिका, कि
मूढ़ मेढ़कों के लीलने को नाग काला है।
किंवा रक्त सुरखी से शत्रु-वक्ष-देश पर,
'जै स्वदेश' लिखने का कलम निराला है।
'शिशु' अधर्मों के उर हूलने को शूल है कि,
शिव का त्रि-शूल बना एक फल वाला है।
पार्थ के प्रखर-शर का है सहचर या कि,
परम-प्रतापी श्री प्रताप ही का भाला है।

[२२]

शिला सा सुदृढ़, तीक्ष्ण कांटे सा नुकीला रहा,
वृक्ष सा फला रहा परोपकार-मय हो।
खड्ड सा गंभीर, झरने सा पानीदार रहा,
सिंह सा विचरता रहा सदा अभय हो।
पुष्प सा प्रफुल्लित, गुहा सा रहा भेदी 'शिशु'
गिरि सा उठा रहा समुन्नत-हृदय हो।
घूमा वन-वन यों स्वतन्त्रता का योगी बन,
परम प्रतापी ओ प्रताप! तेरी जय हो।

[२३]

बाढ़ पर बाढ़ धरे सैना को बढ़ाये हुये,
अवरंग जीत मन-मानी मांगने लगे।
दक्षिण के सोते हुये सिंह को जगाया जाय,
मानो आप मौत की निशानी मांगने लगे।
होते घमासान टूट पड़े वे मराठे 'शिशु'
जंग की पताका अभिमानी मांगने लगे।
पानीदार धार देख शिवा के दुधारे की, वे
शत्रु के सिपाही सब पानी मांगने लगे।

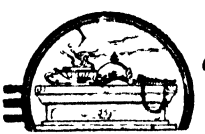

[२४]

मणियों का ढेर था कुबेर था वसुन्धरा का,
पन्ना में विराजा हुआ जननीका लाल था।
मूंछों को मरोड़े बाग मोड़े शत्रुओं की ओर,
घोड़े पर चढ़ कर आने वाला काल था।
रक्तबिन्दुओं से खेला विकट बुंदेला 'शिशु',
शूर अलबेला था, प्रबल प्रण-पाल था।
चोटी लेनेवाले के गले को काट लेनेवाला,
हिन्दुओं का छत्र-पाल वीर छत्रसाल था।

[२५]

ऐसे वीर 'मधुकरशाह' हो गये हैं जो कि
शत्रुओं को एक क्षण में ही चाट लेते थे।
'चेतक-चढ़ैया' ऐसे बांकुरे हुये हैं जो कि
गज के भी शीश पर टाप डाट लेते थे।
'शिशु' ऐसे हुये हैं 'अमरसिंह' जो कि योंही–
कूद के किले से, मृत्यु खाई पाट लेते थे।
ऐसे भी 'पहाड़ी चूहे' हुये हैं जो दौड़कर
देहली की बिल्लियों के कान काट लेते थे।

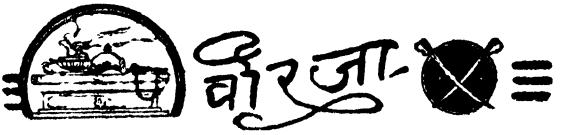

[२६]

सिंह-नारियों का कोई साहस बखानेगा क्या ?
वैरियों के वन को वे आग सौंप देती हैं।
अबला का रूप त्याग, सबला-बला सी बन,
कायरों की हांफनी को झाग सौंप देती हैं।
दानव के जबड़ों से मानवता छीन 'शिशु',
मानव को 'मानवीय-भाग' सौंप देती हैं।
गौरव के रक्षण में चण्डिका के खप्पर को—
सानुराग अपना सुहाग सौंप देती हैं।

[२७]

धन्य धन्य तेग के बहादुर ओ तेग गुरु !
शौर्य-सूर्य मित्र हो तुम्हारे यश कंज का।
शाह को सदैव मात करने की चाल चले,
घोड़ा कभी मरने दिया न शतरंज का।
सींचा कंठ-रक्त से स्वधर्म-वाटिका को 'शिशु'
किंचित् न लाये दीन-भाव कोई रंज का।
इसी से खड़ा है स्वर्ग-सीढ़ी लिये देहली में,
आज भी तुम्हारा गुरुद्वारा शीश गंज का।

[२८]

बोले–'सांगा अस्सी घाव खाके अङ्ग-भङ्ग हुये,
आकुल अतीव होंगे जीवन बिताने में।'
उत्तर मिला कि 'बहु-मुखी रक्त-धार से ही
शूर सोहते हैं मां के चरण धुलाने में।'
'शिशु' फिर बोले–'काने थे वे रणजीतसिंह,
सोहते न होंगे रण-जीत-सिंह बाने में।'
उत्तर मिला कि—'एक आंख से ही देखते हैं,
बढ़िया निशानेबाज अपने निशाने में।'

[२९]

'मंझधार' लिये उमड़ाता चलता है नद,
भारी भारी कूल के कगारे तोड़ फोड़ के।
'विद्युत' के साथ घहराता है घुमड़ घन,
रुख दिखला के युद्ध-दम्पति से होड़ के।
'शिशु' नित्य तम से है लड़ने को जाता रवि,
अपनी सुहानी किरणों से गांठ जोड़ के।
फिर मुझ कैकई के दशरथ नाथ! आप
रण जा रहे हैं क्यों अकेली मुझे छोड़ के?

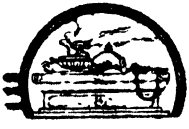

[३०]

आर्यपुत्र ! आओ, लाओ पूजूं भीम बाहुओं को
जाओ युद्ध-थल को अबार नहीं झिलती ।
मुरझेगी प्रेम-पद्मिनी न मेरे मानस की,
नित्य तलवारों के ही पानी में है खिलती ।
इसी देह तक है न सीमित मिलन 'शिशु'
वज्र-शिला तुच्छ आंधियों से नहीं ठिलती ।
सती तथा जौहर की होती न प्रथा तो नाथ !
सम्भव था, स्वर्ग में मैं आप से न मिलती ।

[३१]

प्राणनाथ ! तुम धारते हो रण-कंकण, मैं
चूड़ियां सुहाग की पहिन मोद पाती हूं ।
रिपु-रक्त रंगी रखते हो तलवार तुम,
खांड़े सी मैं मांग को सिंदूर से सजाती हूं ।
'शिशु' सिंह-बधू अर्द्ध-अङ्गिनि तुम्हारी हूं मैं,
ओट में शृंगार के अंगार दहकाती हूं ।
तुम अधर्मों को यम-धाम दिखलाते हो, मैं
पापियों को 'जौहर' में जौहर दिखाती हूं ।

[३२]

'सती' और 'जौहर' के यज्ञ की वे आहुतियां,
खाना तक हाथ से पकाना छोड़ बैठी हैं!
'दुर्गावती' दुर्ग-रक्षिणी की आत्मजायें आज,
अपने ही घर को बचाना छोड़ बैठी हैं!
'कुन्ती' की सहेलियां सलोने शिशुओंको 'शिशु'
भीम-तुल्य भीषण बनाना छोड़ बैठी हैं!
'किरण' की तेजोमयी-रश्मियां भी, कामियों के
सीनों में कटारों का अड़ाना छोड़ बैठी हैं!

[३३]

रोष के अंगारे जिन नेत्रों से सदैव झड़े,
वे अब लजीले बनकर झेंप खाते हैं।
गूंजा जिन कानों में था रण-भेरियों का नाद,
रंग-भरे रसियों को वे ही अकुलाते हैं।
'शिशु' जिन वंक-मूछों का था डंक रूप रहा,
उन पर तेज उस्तरे हा! धरे जाते हैं।
जिन बाहुओं में रण-कंकण बंधे थे कभी,
उनकी कलाइयों में रिष्टवाच पाते हैं।

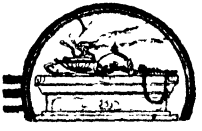

[३४]

सहसा सहस्रों संकटों के सहने के लिये,
साहस-सहित ध्रुव धीर चला आता है।
आंधी-सा अदम्य-वेग सीने में संभाले हुए,
नोकदार 'भारत' का तीर चला आता है।
'शिशु' मातृ-पथ को अकण्टक बनाने हेतु,
हिंसकों की भीर को भी चीर चला आता है।
कण्टको! जो प्राण प्यारे हों तो दूर हटो, देखो,
पाद-त्राण धारे प्रण-वीर चला आता है।

[३५]

मैंने कहा, 'तू तो कहरिनी मां बनी थी फिर,
बात क्या है हरिनी से आंसू ढुलकाने की?
सोगया है लाल इकलौता रण थल में तो,
रोना कोई औषधि है उसके जगाने की?'
बोली, 'मुझे पुत्र जूझने का नहीं शोक 'शिशु',
वेदना नहीं है वंश बेलि बिनसाने की।
रोती हूं इसीलिये कि मेरे और पुत्र नहीं,
आज्ञा दूं जिसे मैं समरांगण में जाने की।'

[३६]

रण वीर राणा! तुम कहते थे साभिमान—
कामी पर करती है मेरी तलवार वार।
सती की पवित्रता के एक एक गाहक के,
सती-तेज द्वारा करती है खंड चार चार।
एक बात है बुरा न मानो तो बताऊं उसे,
तुम फूलते रहे सदैव डींग मार मार,
कैसी सच्चरित्र थी तुम्हारी चन्द्रहासिनी जो,
वैरियों के कण्ठ से लिपटती थी बार बार?

[३७]

माननीय मान क्या है? बाहुओं से पाई जय,
कौन है घृणित मैल? मन की मलीनता।
श्रेष्ठ दान क्या है? मातृभूमि हेतु बलिदान,
सबसे निकृष्ट अभिशाप कौन? दीनता।
'शिशु' शिरोधार्य शुभ भूषण है कौन? शौर्य,
कायरता क्या है? निज हृदय की हीनता।
पूजनीय पुण्य क्या है? दानवों को मेट देना,
कौन है महापतित पाप? पराधीनता।

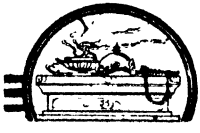

[३८]

उष्ण-तर श्वास से ही लूयें-लपटें हैं चलीं,
उसे मन्द पवन पछाड़ सकता है कौन ?
लोहा घोंट-घोंट कर घुटी में पिलाया गया,
उस वज्र-देह को बिगाड़ सकता है कौन ?
'शिशु' बली अरावली पर भली-भांति गड़े,
केशरिया-केतु को उखाड़ सकता है कौन ?
उपजाये एक रक्त-बिन्दु से प्रताप लाखों,
उस वीर-भूमि को उजाड़ सकता है कौन ?

[३९]

खाद में सबल-शत्रुओं के पंच तत्व मिले,
मातृ-मही-महिमा मिली है मातृ-माया में।
'पानीदार-धार'में जड़ों को अधिकार मिला--
स्वावलम्ब मिला वीर-भूमि वीर-जाया में।
प्राची की विशुद्ध-वायुसे है श्वास पाया 'शिशु'
सूर्य का समाया वंश तेज शूर-काया में।
फिर कहो, दोपहरिये का ओजवान् पुष्प,
कैसे खिल जायगा पराई छत्र-छाया में ?

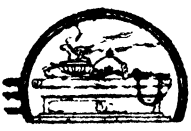

[४०]

माई का वही है लाल जो कि रथारूढ़ हो के,
पथ की व्यथायें सब पीछे को ढकेल जाय।
शैलराज-सी सहिष्णु-शैली अपना करके,
फूल जान कर वज्र सीने पर झेल जाय।
क्रुद्ध हो के वैरी के विरुद्ध युद्ध ठाने 'शिशु'
मां के रुद्ध कण्ठ में विजय-माल मेल जाय।
क्रांति की सजीव कल-कांति अपनाता हुआ,
खेल जान कर झट जान पर खेल जाय।

[४१]

वीणा पर वाणी उसके है गुण गाती, जिसे
स्वर्ग से दुलारा मातृ-भू का कण होता है।
दीनों की सहायता में राज-भोग त्याग कर,
महलों से पूज्य कुटिया का तृण होता है।
'शिशु' आन-बान का प्रधान-प्रश्न आने पर,
प्राणों से महान् मूल्यवान प्रण होता है।
देश के कलेश का न लेश रखने के लिये—
तीर्थ से विशेष माननीय रण होता है।

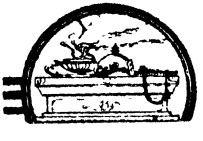

[४२]

प्रतिवर्ष कोपलों में जागृति का भाव भर,
आया ऋतुराज मूर्त्ति बन स्वाभिमान की।
प्रतिमास चन्द्र ने विनष्ट हो के जन्म लिया,
युक्ति बतलाई मरे हुओं को उठान की।
प्रतिदिन ऊषा ने सन्देशा दिया दिव्य 'शिशु'
याद दिलवा के पूर्वजों की आन-बान की।
अस्तु अब होकर अ-शीश लो अशीष मां की,
बेला आ गई है नौजवानो! बलिदान की।

[४३]

अग्नि वंशजो संभालो होश देखो तो तुम्हारे
तरुण दिवाकर की संध्या ढली जाती है।
जानते हो तेज हीन जाति इस जगती में,
पामरों के द्वारा दिन दिन दली जाती है।
'शिशु' शत्रुभाल फोड़ अपनी बढ़ाओ लाली,
कोरा माथा ठोंकने से साख चली जाती है।
ले लो वर फिर न मिलेंगे ये सरोज शीश,
चण्डिका के पूजन की बेला टली जाती है।

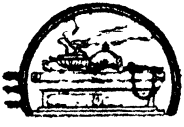

[४४]

हृदय उमंग में तरंगवत् रंग होगा,
जीवन का सोता एक बार उठने तो दो।
लाज का जहाज लग जायगा किनारे पर,
क्षीर-सिन्धु-शायी करतार उठने तो दो।
नीचों की तलैयों में रहेगी शेष कीच 'शिशु',
सदियों से प्यासी तलवार उठने तो दो।
उथले थलों में फिर पूर्व सा चढ़ेगा पानी,
हिन्द महासागर में ज्वार उठने तो दो।

[४५]

चेत ओ सपूत ! तू युवक हो गया है अब,
आलस में रक्त की शिरायें पगने न दे।
मातृ-भूमि का जो दिन रात हैं जलाते उर,
उनके दिये को तू बुझा दे, जगने न दे।
अन्धकार में जो हो गया सो हो गया ही 'शिशु',
अब तो प्रकाश में ठगों को ठगने न दे।
जिसने दिठौना था लगाया तेरे माथे पर,
उस मां के भाल में कलंक लगने न दे।

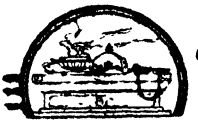

[४६]

चांदनी के पाले कैसे प्रौढ़ता करेंगे प्राप्त,
पावक परीक्षण के प्रबल प्रमाणों से।
नखों के कटाने में हटाने वाले हाथ कैसे,
लेंगे जय-पत्र रक्त सने अरि प्राणों से।
मेंहदी के नाजुक हथेली के रंगैया 'शिशु'
मूंठ क्या सजा सकेंगे कठिन कृपाणों से।
वेध क्या सकेंगे वे विपक्षियों के वक्ष देश,
जो स्वयं विधे हैं चंचला के नैन बाणों से।

[४७]

सुलझी अलक अवलोक जो उलझ गये,
कैसे वे सफल होंगे जाल के विनाश में?
काम अग्नि के तपाये तापे भरमाये हुये,
कैसे जा सकेंगे गुप्त शत्रु की तलाश में?
'शिशु' कजरारे नयनों में दुर जाने वाले,
वृद्धि क्या करेंगे शौर्य ज्योति के विकास में?
वृद्धा बंदी मां का क्या छुड़ायेंगे वे बंधन जो,
आप ही बंधे हैं तरुणी के बाहु पाश में?

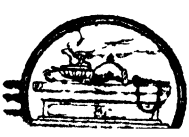

[४८]

भाला लिये राणा हैं विराजे वीर-बाहुओं में,
वज्रता रमाये हैं दधीचि हाड़-हाड़ में।
प्रण के चरण में है अङ्गद की पद-शक्ति,
रिपुओं को डालते रहे जो खिलवाड़ में।
चर्म-चक्षु मूंद प्रज्ञा-चक्षु से निहार 'शिशु',
सिंह का स्वरूप छिपा तेरी नर-आड़ में!
वीर! उठ बड़े बड़े घोर-घाघ और बाघ
घिघिया उठेंगे तेरी एक ही दहाड़ में।

[४९]

री पतंग! देख तेरी डोरी है पराये हाथ
छोड़ ऐसा सुख साज, तुझको शपथ है।
क्यों परावलम्बन में नाक यों कटा रही है,
अब भी बचा ले लाज तुझको शपथ है।
'शिशु' देख कब से सिखा रहे हैं सीख खग,
सोच ले बना के काज तुझको शपथ है।
विजित-शरीर को विजेता करने के लिये,
आज बन जा तू बाज, तुझको शपथ है।

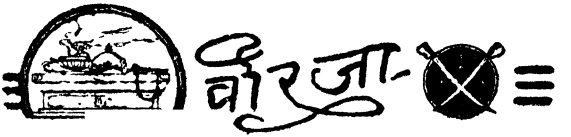

[५०]

मणि-धर ! बन्दी हो संपेरों की पिटारियों के,
कौड़ियों के छुद्र-रुजगार में पड़े हो तुम।
केचुओं की भांति हो कुचल जाते कायरों से,
मिट्टी चाट चाट कर हार में पड़े हो तुम
'शिशु' क्या न मुंह में रहा है विष-दन्त वह ?
कौन से निपनियां विचार में पड़े हो तुम ?
'कालों' के तो आगे जलते नहीं चिराग फिर,
कैसे आज काले अन्धकार में पड़े हो तुम ?

[५१]

चेतो चेतो चेतक-चढ़ैया के चतुर वीरो !
तुमने हजार बार कारागार खोले हैं।
'छोटे मुंह बड़ी बात' वालों की जबानों पर,
ऐसे ताले डाले कि कभी भी नहीं बोले हैं।
'शिशु' हल्दी-घाटी पानीपत के रण-स्थलों में
वैरियों को पीले करने के रंग घोले हैं।
मां का ऊंचाभाल रखने को, नीच अधमों के
शीश तलवार की तराजू पर तोले हैं।

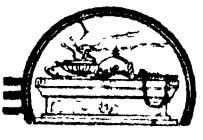

[५२]

यदि घर के ही तुम भेदी बन जाओगे तो,
दुखिया जननि और दुःख सह जायेगी।
यदि शिवा गोविन्द प्रताप बन जाओगे तो,
शुभाशीष-वाले प्रिय शब्द कह जायेगी।
'शिशु' यश अपयश का ही मिलना है यहां,
साथ में न कोई वस्तु यह वह जायेगी।
देश-शत्रु देश-मित्र कोई भी रहेगा नहीं,
कहने को केवल कहानी रह जायगी।

[५३]

पग और मन में लगा दो बढ़ने की होड़,
प्रतियोगिता का भाव शीघ्र जय लायेगा।
रोड़ों से न चौंको, कूट पीट कर आगे बढ़ो
धूल भरा मग कुछ प्रौढ़ता ही पायेगा।
'शिशु' नियमानुकूल बायें रहो, आपदायें—
हरने को अखिलेश आप दायें आयेगा।
कोई साथी नहीं, न हो अथ से अभीष्ट तक
पथ तो बराबर तुम्हारे साथ जायेगा।

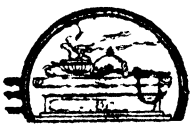

[५४]

पौरुष को त्याग, भाग्य-वाद के सहारे लग,
काया क्यों किये हो कूर-कायर सियार की।
गा कर नपुंसक-तराने वे निकृष्ट हाय!
रट भूल गये क्या विकट 'मार मार' की?
'शिशु' क्या वे सीखे हुये हाथ साथ छोड़ गये,
धार लौट गई क्या जुझाऊ तलवार की?
कब तक वीर-कुल के कलंक बन कर
बाट तुम जोहोगे कलंकी अवतार की?

[५५]

जीवन के ध्येय का निशंक-शंख फूंक कर,
प्राण-हीन पंजरों के प्राण बन जाना तुम।
उनके जो काई लगे कुंठित हों शस्त्र, उन्हें
तीक्ष्ण करने के लिये शाण बन जाना तुम।
किन्तु जो कुटिलता में अग्रसर होवें 'शिशु'
उनके विरुद्ध धनु-वाण बन जाना तुम,
रण को प्रयाण कर, शत्रु म्रियमाण कर,
वीरता का विमल प्रमाण बन जाना तुम।

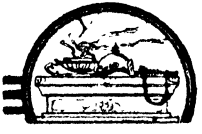

[५६]

अब तक घूमे हो गुलाबी गलियों में अब,
रक्तिम पराग की वन-स्थली में घूम लो ।
भृकुटी-कटारियों से बहुत कटे हो किन्तु,
अब दुष्ट शत्रुओं से छीन रण-भूमि लो ।
'अमी हलाहल मद भरे' चाव ही से 'शिशु'
कर्म-साधना का सोम-रस पी के झूम लो।
किया है हजार बार प्रिया-मुख-चुम्बन तो,
एक बार तलवार की भी धार चूम लो ।

[५७]

तुमको उचित था कि गीली बलि वेदी पर,
जीवन-विदा से मृत्यु स्वागत को पालते ।
खौलते रुधिर से महान् वरदान ले के—
वैरियों का दल उष्ण श्वास में उबालते ।
लज्जा नहीं आती अबलासे रोरहे हो 'शिशु',
सिंहों के सपूत क्या कहीं हैं आंसू डालते ?
पिट के सलीम को सलाम करते हो हाय !
क्यों नहीं प्रताप वाले भाले को संभालते ।

[५८]

सांवले-शरीर पर कोढ़ के सफेद-दाग
जम कर बैठ गये पूर्व-अधिकारी से।
सत्य और न्याय के गले पर धरी है छुरी,
सदाचार मरा जा रहा है कु-विचारी से।
'शिशु' रौंदी जा रही दिनों दिन है देव-भूमि,
दुष्ट-दुराचारी-दानवों की भीर भारी से,
ऐसे अवसर पर किस से करोगे प्रेम,
रंग की अटारी से कि जंग की कटारी से।

[५९]

'क्या करें, अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता है'
—उर में तुम्हारे क्यों बसा यों अविवेक है।
'तू' के बहुवचन बने हो तुम, सोचो नेक
देखो क्या बहादुरों की होती यही टेक है।
'शिशु' एक सूर्य एक सिंह की न भूलो शक्ति,
साहसी सुभट एक होके भी अनेक है।
चेत जाओ तुम तो हो अंश उस ईश्वर के—
इस जगती में आदि-काल से जो एक है।

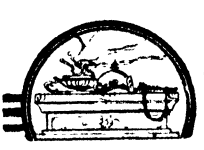

[६०]

'वीरों के ही भोगने की वस्तु है वसुन्धरा'—ये
शब्द सुन कर भली-भांति ध्यान दीजिये ।
निबलों को जीने का नहीं है अधिकार कहीं,
इसीलिये आप बाहुओं को दृढ़ कीजिये ।
मुहताज प्राणों के हैं पाते नहीं ताज 'शिशु',
जान पर खेल प्रति-द्वन्दियों को मीजिये ।
संकट में फंस कर हंस कर सर पर—
ताज लेने के लिये कफन बांध लीजिये ।

[६१]

हांक हनुमानवाली दीजिये गुमान-भरी,
कीजिये प्रताप-प्रण पौरुष पसारिये ।
मारुत की गति से चलाइये युगल पद,
डटने में बालि-सुत वाले पग धारिये ।
'शिशु' अपनाइये अचूक लक्ष्य अर्जुन का,
शंकर के तीसरे नयन से निहारिये ।
बघनख वाले पंजे लीजिये 'शिवा' के और
भीम की भुजायें ले समर को सिधारिये ।

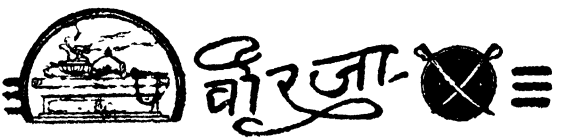

[६२]

पूज्यश्री पिताजी, आप जा रहे समर को हैं,
हर्ष ! हर्ष ! अमर सुधा को पिये आइये।
छीनी हैं अनेकों ही ध्वजायें किन्तु इस बार,
मेरी नेक विनती को पूरा किये आइये ।
'शिशु' जीत जाने पर लाइये ध्वजायें नहीं,
शत्रु के कफन को वहां ही दिये आइये।
मित्र-मंडली में बालकों के संग खेलने को,
मेरे लिये एक तलवार लिये आइये।

[६३]

कैसे तुम वीर-नर हो जो बलहीन पर,
सन्धि से सना हुआ दुलार डाल देते हो।
मद अभिमान वाले बोझों लदी ग्रीवा पर,
छोटी तलवार का भी भार डाल देते हो,
भागते कुकर्म से हो पीठको दिखाके 'शिशु'
रिपु के पराग पर छार डाल देते हो।
अबला के आगे आंख तक तो उठाते नहीं,
देख के निहत्था हथियार डाल देते हो।

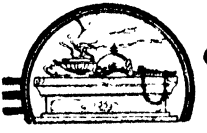

[६४]

कामुक कुप्रवृत्तियों के कीड़े हटो दूर रहो,
काली-घटा देख हठ भारी मत पकड़ो।
केंचुए पकड़ कर हौसले बढ़ाये अरे,
नागिन विषैली-सटकारी मत पकड़ो।
सावन के अन्धे हो, हरा ही देखते हो 'शिशु',
'वीर-बहूटी' सी वीर-नारी मत पकड़ो।
भरे हो शरीर में अपावन-बारूद अरे!
जुगनू के धोखे चिनगारी मत पकड़ो।

[६५]

एरे स्वर्ण के कलश! तेरे वे घनेरे गुण,
मेरे सब जाने हैं, मुझे क्या भरमाया है।
मठ के शिखर पर आसन जमाये हुये,
कर्मठ-सा रूप धर के क्यों इतराया है।
तेरी उच्चता में शून्यता ही शून्यता है 'शिशु'
बतला तू, कौन ठोस कार्य कर पाया है।
तुझ से विशेष मूल्यवान वह पत्थर है,
जो कि राष्ट्र-मन्दिर की नींव में समाया है।

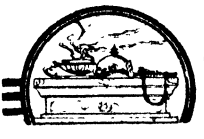

[६६]

चाहे होवे प्यारे से भी प्यारे की वियोग-व्यथा,
चाहे मारे जाने का भी शोक सहना पड़े।
चाहे तीनों तापों में महान् यातना के साथ,
सुकुमार तन और मन दहना पड़े।
चाहे ऊंचे गिरि से भी नीचे गिरना हो 'शिशु',
चाहे भारी सिन्धु में अकेले बहना पड़े।
किन्तु नीची आंख कर नीचों के रहे जो नीचे,
नाथ! ऐसे नीच के न नीचे रहना पड़े।

[६७]

अधम-धड़ों के शीश-भार का हरैया है कि,
स्वर्ग के सिधारने को शूर का सहारा है।
शंकर की परम भयंकर है भृकुटी या,
चण्डिका की जीभ का सहोदर दुलारा है।
'शिशु' अभिमानी-ग्रीवा नापने का गज है कि,
रिपुओं की दुनियां का दूसरा किनारा है।
चकाचौंध-कारी चपला का चल-चित्र है कि,
पानीदार धारवाला वीर का दुधारा है।

[६८]

एकता-गणित के हैं एक एक ग्यारह या,
वैरी बांधने को नाग-पाश अवतार हैं ?
शत्रुओं की आंतें खींचने को बघनख हैं कि,
देह में लगे ही प्राकृतिक हथियार हैं ?
वीर-गाथा लिखने की लौह-लेखनी हैं 'शिशु',
या कि रण-धार के अपार दोनों पार हैं ?
शक्ति में अखण्ड बरिबण्ड भुजदण्ड हैं कि,
युद्ध-पोत खेने के प्रचण्ड पतवार हैं ?

[६९]

आयोजन योजन अनेक का न ठीक जानो,
कार्य-क्रम जिसमें उड़ाऊ खग बन जांय।
चाहिये तो यह कि चरण-चिन्ह अङ्कित हों,
जहां जहां जांय तहां तहां मग बन जांय।
'शिशु' वे पथिक अग्र-गामी न बनेंगे कभी,
जिनसे न वासी देश के सजग बन जांय।
संभल के चले गये धन्य हैं वे दो ही डग,
अनुगामी जिनके करोड़ों-पग बन जांय।

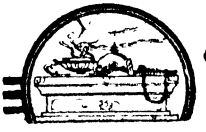

[७०]

वह धर्म जियेगा न, जिसके मतावलम्बी
सुधा से सना हुआ सुधार नहीं सुनते।
वह वेष रहेगा न, जिसके प्रथानुयायी
व्यवहार वाली बातें चार नहीं सुनते।
वह जाति नष्ट होगी, जिसके सदस्य 'शिशु'
दलित-जनों का हाहाकार नहीं सुनते।
वह राष्ट्र मिटेगा, मिटेगा, जिसके युवक
अपने समय की पुकार नहीं सुनते।

[७१]

भक्ति हो हिये में जगदीश जन्मभूमि की ही,
शक्ति हो असीम भीम और हनुमान की।
तानसेन वाली तान से न जो बंधा ही रहे,
अपितु अलख भी जगावे अग्नि गान की।
होकर अ-शीश जननी की ले अशीष 'शिशु'
सफल बनावे परिभाषा बलिदान की।
आन रक्खे बान रक्खे शान रक्खे मान रक्खे,
देश को है चाह अब ऐसे नौजवान की।

[७२]

एक ही पिता के पुत्र हो के हृदयों में, कहो
क्यों नहीं समान अधिकार वाली चाह हो।
अनाचार है कि एक हिम से किलोलें करें,
दूसरे में ज्वाला-मुखी का सा उर-दाह हो।
'शिशु' यदि दाह ही हो तो मनुष्यता से शीघ्र,
आंसू पोंछने की कोई समुचित राह हो।
क्यों न वहां क्रान्ति की भभक भाप उठे जहां,
अन्तर में दाह और आंख में प्रवाह हो।

[७३]

जिसकी कुटिल नीति का यही नियम हो कि,
फूटे हुए भाग्य और और भी फुड़ाये जांय।
जिसके सुधार में बिगाड़ का उपक्रम हो,
दानवों से मानवों के भाव बिछुड़ाये जांय।
'शिशु' जिसके अशान्ति-कारी बन्धनों में फंस,
शान्ति वाले सूत्र ऐंठ ऐंठ के तुड़ाये जांय।
क्यों न ऐसे पातकी पतित पापी पामर के,
प्राणों के पखेरू तलवार से उड़ाये जांय।

[७४]

एक मीन पानी से विहीन प्राण छोड़ गई,
कोई भीरु बोला, 'इसे जीवन था भार क्या ?
हम जिस वायु में हैं जीते उसमें ही मरी,
इसको था जीने से अधिक नहीं प्यार क्या ?'
'शिशु' तब एक स्वाभिमानी यों तमक उठा,
'तुम जानो जीने या न जीने का विचार क्या ?
पानी और जीवन में शब्द दो हैं मानी एक,
पानी ही नहीं तो फिर जीवन में सार क्या ?'

[७५]

जिसने लगा के मुंह बाघिन का दूध पिया,
रिपुओं के रक्त-पान पर जिसे प्यार है।
जिसके अधर दानवों का अट्टहास सुन
फड़क उठे हैं, रोष का न कुछ पार है।
'शिशु' जिसने लड़ाये दांत यम-दाढ़ों से भी,
एक बार मृत्यु को भी दे दी ललकार है।
मंझधार वाले बेड़े पर अकुलाई मां के—
बीड़े को चबाने का उसी को अधिकार है।

[७६]

किन के लिये जलद दौड़ कर सागर से,
तप से विशुद्ध किया हुआ अर्घ्य लाते हैं ?
किन के लिये प्रसन्नता से श्वास लेते हुए,
पावन पवन देव व्यजन डुलाते हैं ?
'शिशु' किन के लिये वसुन्धरा के प्यारे-प्राण,
स्वागत में अपने शरीर को घुमाते हैं ?
उनके लिये, जो मां के हेतु बलि-वेदी पर,
कुण्ठित कुठार को भी कण्ठ से लगाते हैं।

[७७]

किन के लिये महान आरती का साज लिये,
सूर्य और चन्द्र दिव्य-दीपक सजाते हैं ?
किन के लिये अनन्त-अन्तरिक्ष के नयन,
निशि को भी अनिमेष-दृष्टि रंह जाते हैं ?
'शिशु' किन के लिये प्रभात से ही द्विज गण;
ईश्वर से यश की अमरता मनाते हैं ?
उनके लिये, जो मां के हेतु बलि-वेदी पर;
कुण्ठित-कुठार को भी कण्ठसे लगाते हैं।

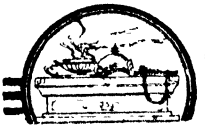

[७८]

आनन में हास का निवास रहता है, जो कि
हास नहीं पाता त्रास-दायी यातनाओं में।
दुराचारियों को चूर-चूर करने का चाव,
खेलता है नित्य भद्र भीम भावनाओं में।
दृष्टि-तेजसी में ज्वाल-ज्योति जगती है 'शिशु'
लगती है आग शत्रुओं की कामनाओं में।
सिंह सी सपूती माजती है राजपूती मध्य,
विजय विराजती है वीर की भुजाओं में।

[७६]

पंकज पराक्रम का वीर हैं खिलाते, किन्तु
जीवन परम्परा में पंक नहीं होता है।
लेते हैं तरंग खरे पानी में, परन्तु तन
खारी रतनाकर सा रंक नहीं होता है।
'शिशु' चौकड़ी वे भरते हैं बड़ी चौकसी से,
पर चित्त मृग सा सशंक नहीं होता है।
आसमान पर तो हैं रखते दिमाग़, किन्तु
कीर्त्ति में मयंक सा कलंक नहीं होता है।

[८०]

'दादा! रो रहे हो मुझ लक्ष्मण के राम अरे!
मैं तो अपनाता हूं सहर्ष मृत्यु-ओक को।
धर्म-पथ के पथिक धीर-वीर हो के, आप
रोड़ा मानते हो क्या दीवालवाली रोक को?'
उत्तर दिया कि, 'मुझे मृत्यु का न भय 'शिशु',
रो रहा हूं हाय! आज ले के इसी शोक को।
आया नर-लोक में मैं तुझ से प्रथम, किन्तु
तुझ से प्रथम जा सका न सुर-लोक को।'

[८१]

शान्ति के समय जो किसान बने गांवों में थे,
श्रम से सकल वस्तुओं को उपजाते थे।
क्रान्ति के समय सरदार की पुकार पर,
वे ही लोग साहसी सिपाही बन जाते थे।
'शिशु' सैन्य संख्या उच्च कोटि की बनाने हेतु,
अपनी इकाइयां मिलाने को सिहाते थे।
हम भी चलेंगे और हम भी चलेंगे और
हम भी चलेंगे कहते ही चले आते थे।‡

---

* गुरु गोविन्दसिंहजी के दो सिंह पुत्र विधर्मियों द्वारा दीवाल में चुनाये गये। छोटे बच्चे के पूछने पर बड़े भाई ने उत्तर दिया है।

‡राणा का शासन-काल

[८२]

क्रान्ति का बिगुल और शांति का संदेशा लिये,
मानवों में देवदूत राजपूत होता है।
दुराचारियों की संख्या शक्ति को मिटाने वाला,
बल-बूते में अकूत राजपूत होता है।
'शिशु' देव-भूमि की विभूति-भरी सभ्यता के,
रक्षण में पुरुहूत राजपूत होता है।
जीवन की धारा से स्वदेश-बेलि सींचने में,
पूज्य माता का सपूत राजपूत होता है।

[८३]

बन्धन से भयभीत पक्षी जान बूझ कर,
दाने रहे दूर, मोतियों को भी न लेते हैं।
आहट को पाते ही तुरन्त उड़ते हैं और,
पंख-पतवार से स्वतंत्र-नाव खेते हैं।
'शिशु' वे मनुष्य किस बूते से हैं कहते कि
'प्राणियों में सब से अधिक हम चेते हैं।'
जो कि परतंत्र हो के कंचन की काया और
माणिक सा मन कौड़ियों में बेच देते हैं।

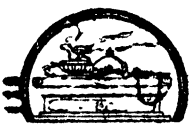

[८४]

सींकचों से सधी हुई छत देख देख कर,
मुक्त व्योम मण्डल को प्राण अकुलायगा।
कण्टक विहीन फर्श में चुभेंगे कांटे नित्य,
वन विचरण को चरण ललचायगा।
'शिशु' दिये भोजन से पेट न भरेगा कभी,
लोभ स्वाभिमान पर विजय न पायगा।
कितना भी पालो, पिजड़े का द्वार पाके खुला
सिंह फिर तीतर सा भीतर न जायगा।

[८५]

संख्या नहीं पूछते कभी भी आततायियों की,
'हैं कहां वे ?'—केवल पते को अकुलाते हैं।
पाते हैं ठिकाना तो मनाते हैं महान् मोद,
'छप छप'—जप जपते ही दृष्टि आते हैं।
डुबकी लगाते हैं, डुबाते हैं विपक्ष 'शिशु',
बेड़ा देश-जाति का किनारे से लगाते हैं।
इस भांति अंग में तरंग का-सा ले के रंग,
खंग वाले जंग की ही गंग में नहाते हैं!

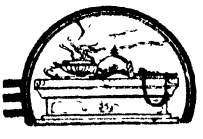

[८६]

लेखक दो हाथों से लिखेगा उनकी क्या कथा,
जो दो हाथ पा के ही सहस्रबाहु होते हैं।
थके हुए धूल-सने जननी के चरणों को,
शत्रुओं के उष्ण-उष्ण शोणित से धोते हैं।
'शिशु' जोतते हैं जय-रथ में बनैले सिंह,
भीरु-हृदयों में वीरता का बीज बोते हैं।
भीष्म के विशुद्ध-रक्त का प्रमाण देने हेतु,
घर-सेज छोड़ शर-सेज पर सोते हैं।

[८७]

व्यर्थ है 'सरलता' जो वैरियों को घेरने में,
अपने अभीष्ट को न शीघ्र हेर लेती है।
उसकी अपेक्षा तो 'कुटिलता' ही ठीक है जो,
दूर गये सु-दिन को झट फेर लेती है।
'शिशु' देख लो न, तीन सीधी रेखाओं की शक्ति
त्रिभुज बनाने में अधिक देर लेती है।
किन्तु वह वक्र रेखा धन्य है, अनन्य है, जो
एक होकर ही पूरा क्षेत्र घेर लेती है।

[८८]

शूर के स-शस्त्र हाथ में यही लिखा है लेख—
अपने-पराये की प्रकट पहचान हो।
धड़कन वाला भीरु-हृदय अभय रहे,
गौरवीली-तान लिये निधड़क-गान हो।
आयु-प्रद वायु में बिहार करें सांसें, 'शिशु',
अपनी जमीन अपना ही आसमान हो।
स्वर्ग-अपवर्ग का महान् अमरत्व लिये,
स्वत्व हो, स्वतंत्रता हो और स्वाभिमान हो।

[८९]

कुटिल विपक्षियों को देख के प्रविष्ट हुईं,
रक्त की शिरायें सरिताओं की जवानी में।
वीरोचित चित ने विशालता का रूप लिया,
रोक लग गई क्रूरता की मनमानी में।
अधर फड़क उठे बाहुओं के साथ 'शिशु'
हाथ गया मूंठ पर जोश की रवानी में।
पानीदार धार से अंगारे जगे रोष के यों,
मानो लग गई हो अगम आग पानी में।

[६०]

जब चण्डकर ने प्रचण्ड किरणों का झुण्ड,
अन्धकार के अखण्ड नाश को निकाला था।
जब भूमि-कम्प ने विदीर्ण धरणी को कर,
अचलों के उच्च शृंग पर हाथ डाला था।
जब वायु-वेग ने कंटीले तरुओं को 'शिशु',
जड़ से उखाड़ डालने का प्रण पाला था।
शूर ने तभी विपक्षी-संग जंग ठानने को,
अंग में उमंग भर खंग को संभाला था।

[६१]

शीत काल ने सभी प्रकार से सभीत किया,
हिम के महान् खण्ड बांध दिये सर से।
ग्रीष्म काल ने कराल ज्वाला सा दिखाया क्रोध,
अंग पिघलाये दहकाते दिनकर से।
तो भी यातनाऐं झेलकर तन पर 'शिशु',
नित्य ही तना रहा, डिगा न किसी डर से।
गौरव के गिरि से गिरे न कोई पा के दुख,
सीख ले ले गुरु गिरिराज के शिखर से

[६२]

जो कि विश्व में है उच्च चोटी का अचल वीर,
हिम का रजत-छत्र धारे अभिराम है।
सुन्दर सुधा सी गंग-धार को बहाये हुए,
यश की तरंग से धवल किये धाम हैं।
'शिशु' सरिताओं, झरनों की गति में सदैव,
जीवन प्रदान करता जो अविराम है।
पत्थर की देह में भी लिये हैं सजीव प्राण,
ऐसे गिरिराज को प्रणाम है प्रणाम है।

[६३]

पादपों के पुंज पतझड़ की विपत्तियों में,
पत्तियों को त्याग के बसन्ती छवि पाते हैं।
व्योम-क्षेत्र ग्रीष्म की जलन से झुलस कर,
नीर भरे नीरदों को पा के उमगाते हैं।
'शिशु' सरिताओं के भी दीन दुबलाने अंग,
वृष्टि में गंभीर-नीर पा के लहराते हैं।
कोई कर्म-वीर दुख में तजे न धीर, क्योंकि
त्याग और तप न किसी के व्यर्थ जाते हैं।

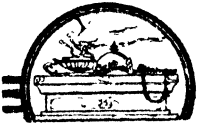

[६४]

लहराती अलकें इधर उलझा रही हैं,
फन्दे हैं उधर नाग-पाश वाले जाल के।
इस ओर चुम्बक सा चुम्बन है खींच रहा,
उस ओर किलक रहे कलेऊ काल के।
'शिशु' है इधर मोह कोमल कलाइयों का,
हाथ हैं उधर विकराल-करवाल के।
देखें कौन चन्द्रावत कूदे रण-मध्य आज,
कण्ठ में प्रिया की लाल मुण्ड-माल डाल के।*

[६५]

झंझा फिर फिर के फरेरा फटकारती है,
प्रौढ़ पतवार का सहारा किस ओर है?
दृष्टि से हैं ओझल दिशायें विदिशायें सब,
प्रबल प्रगति लिये धारा किस ओर है?
'शिशु' तू तरुण है, तरणि का है प्रतिनिध,
ढूंढ़ता है क्यों न, कि किनारा किस ओर है?
रात-दिन चन्द्र को चकोर सा निहारता है‡
देखता है क्यों न, ध्रुव-तारा/ किस ओर है?

---

*चन्द्रावत की द्विविधा
‡चन्द्रमुखी के मुख को देखते रहना
/ध्रुवतारा = कर्त्तव्य, मुख्योद्देश्य

[६६]

सगुन मनाते हैं वे ठौर ठौर पर जो कि—
मौर धर कर वधू ब्याहने को जाते हैं।
सगुन मनाते हैं वे ठग रात दिन जो कि
दूसरों का माल छल कर हथियाते हैं ।
सगुन मनाते हैं वे रोजगारी, जो कि 'शिशु'
पैसे को लड़ा कर के पैसे को कमाते हैं।
सगुन मनाते हैं नहीं वे सिंह-शावक, जो
नित्य रण चढ़ कर लोहे को चबाते हैं ।

[६७]

उस देश में ही चिर जीवन रहेगा, जहां
कर्मवीर आनबान पर हैं तुले हुए ।
सरल सुधा से उर-क्षेत्र हैं सिंचे परन्तु,
तीव्र हथियार हैं गरल से धुले हुए ।
अधम विलासिता से कोसों दूर हो के 'शिशु'
सुभट स्वभाव शूरता में हैं धुले हुए ।
अतुल अतीत का अतीव ओज लाने वाले,
सामने हैं पृष्ठ इतिहास के खुले हुए ।

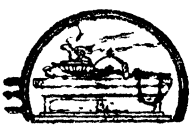

[६८]

कर्म पथ में करोड़ों रोड़ों से अटक कर
वीर जनों के कभी शकट नहीं रुकते।
सामने समर में विरोधियों से द्वन्द कर
उनके प्रचुर शक्ति-कोष नहीं चुकते।
'वीर हो तो आओ' ललकार सुनकर 'शिशु'
म्यानों में हैं उनके दुधारे नहीं लुकते।
क्योंकि झंझा के विकट झोकों के समक्ष आके
वृक्ष झुकते हैं शैलराज नहीं झुकते।

[६६]

प्राण भीरु, सूने क्षण पा के कछुए की भांति,
हाथ पैर बाहर निकाले हुए आते हैं।
खटके के पाते ही न जाने फिर जाते कहां,
अंगों को छिपाते, मुंह भी न दिखलाते हैं।
किन्तु प्रण-वीर निज घर से निकल 'शिशु'
दृढ़ता के साथ पग आगे ही बढ़ाते हैं।
कैसी ही कठोर कठिनाई क्यों न हो, परन्तु
गज दन्त के समान भीतर न जाते हैं।

[१००]

देखता हूं—मानवीय जन्म-सिद्ध अधिकार
लेने को सयत्न साधना संभालता है कौन ?
व्यक्तिगत क्रीड़ा में महान् व्रीड़ा मान कर,
पीड़ितों की पीड़ा को झपट टालता है कौन ?
'शिशु' सामूहिक सौख्य-सम्पदा के रक्षणार्थ,
अपने को घोर आपदा में डालता है कौन ?
हिरनी से खेल खेलना तो सब जानते हैं,
देखूं इस भूखी सिंहनी को पालता है कौन ?